Vagdhara: A Multilingual Peer Reviewed Research Journal (ISSN 2839-6197)
Vol. 1 No. 3 (2026): April-June; Website: https://vagdhara.in/index.php

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में मानव-मूल्यों से संघर्ष

***डॉ. बिजेन्द्र कुमार**

*विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आसनसोल गर्ल्स कॉलेज, आसनसोल पश्चिम बर्द्धमान (प.बं.)

Received: September 19, 2026 *Accepted: November 07, 2026*

शोध सार

ओमप्रकाश बाल्मिकी हिन्दी दलित कविता के मर्मज्ञ विद्वान और बहुचर्चित कलमकार रहे हैं। वह अपने दलित जीवन में वर्णवादियों के द्वारा शोषित व भोगे हुए कटु अनुभव और समय की हकीकत को न सिर्फ अपनी कविता में ढालकर शब्दबद्ध तथा लयात्मकता प्रदान करते हैं बल्कि उनकी कविता भविष्योन्मुखी दलित समाज की प्रेरणास्रोत साबित होती है। है। इसलिए दलित कविता साहित्य की सहज, सरल अभिव्यक्ति है जो लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति अपनी निष्पक्षता बयान करती है। ऐसे में आज मानवीय मूल्यों में आई मिलावट और गिरावट के बीच बाल्मिकी की कविताएँ मूलतः व्यक्ति की जिजीविषा, संघर्ष एवं चेतना से परिपूर्ण मानव जाति की समृद्धि तथा विकास की अगुवाई करती है।

बीज शब्द : मानव-मूल्य, जीवन-मूल्य, सांस्कृतिक आदर्शों, अमानवीय शोषण, वर्णाश्रम व्यवस्था।

साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं एवं इस पूरकता की कड़ी में मानव की अहम भूमिका है। मानव अर्थात् दया, करूणा, शील, सौंदर्य, क्षमा, प्रेम, सहभाव, सदाचार परोपकार, दान, त्याग समता से निर्मित व युक्त जीवन-जगत में अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ, विकासशील प्राणी होने के कारण समाज में उसे मानव, मानवीय व मानवतावादी कहा जाता है। प्रो. अमरनाथ के शब्दों में कहें तो – ''मानव में सत्वगुण की प्रधानता होने के कारण त्याग, तप, सत्य, सदाचार, परोपकार और अहिंसा आदि गुण स्वभावतः पाये जाते हैं। मानवता के गुण से सम्पन्न व्यक्ति सर्वथा सिद्ध-संकल्प, सर्व-सुहृद, समदर्शी और सर्वहितैषी होता है।''[1] अर्थात् मानव का सीधा संबंध मानव की मानवता और उसके जीवन-मूल्यों से है। जीवन-मूल्य ही स्वभावतः मानव-मूल्य है जिससे समाज में मानव की पहचान और प्रतिष्ठा कायम होती है। तथा इसके मूल में मनुष्य का भाव और भावना प्रमुख प्रेरक का कार्य करती है। प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद का मानना है कि ''मानव जीवन मूल्य भावना से नियंत्रित, व्यवस्थित, निर्दिष्ट, परिचालित एवं प्रेरित होता है। इसका कारण यह है कि मानव मस्तिष्क स्वभावतया मूल्य शोधक है।''[2] मानव-मूल्य ही वह कारक तत्व है जिससे मनुष्य जीवन फलीभूत होता है। भारतीय समाज और संस्कृति में मानव-मूल्य की विशेष महत्ता रही है। यह कहना गलत न होगा कि मूल्य ही वह मापक यंत्र है जो किसी समाज और संस्कृति की उपयोगिता को निर्धारित करती है। मूल्य से हटकर न तो समाज की कल्पना की जा सकती है, न ही संस्कृति की और न तो राष्ट्र की। क्योंकि मूल्य ही किसी राष्ट्र के सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान की सम्पत्ति होती है जिसमें उसके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक आदर्शों की भी पहचान कायम होती है तथा उसके विकास-यात्रा को परखा व जाना जाता है। डॉ. राधाकमल मुखर्जी का कहना है कि ''मूल्य जीवन, परिवेश, आत्म समाज, संस्कृति और इन सबके अलावा, मानवीय अस्तित्व, अनुभूति के आदर्शात्मक, आध्यात्मिक आयाम से उद्भुत होते हैं।''[3] इसी के आधार पर मनुष्य अच्छे-बुरे का निर्णय करता है। सत्य, निष्ठा, मानवतावाद, सहिष्णुता, समभाव के आदर्श ही शाश्वत जीवन मूल्य है जिनके अभाव में मानव जीवन की संकल्पना व्यर्थ है।

एक रचनाकार भी अपने समाज और संस्कृति की देन होता है। फलतः वह जिस परिवेश में पलता और बढ़ता है उसकी छाप उसकी रचनाओं में साफ-साफ दिखती है। जन्म से लेकर अपने पूरे जीवन की विकास-यात्रा में वह समाज के द्वारा जिन मूल्यों को ग्रहण करता है, साहित्य में वह उसे यथावत पिरोता चलता है। मानव-मूल्यों से अलग उसकी और कोई दृष्टि नहीं होती है। डॉ. धर्मवीर भारती ने साहित्य में मूल्यों की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए लिखते हैं-''साहित्य की महत्ता और सामाजिक उपयोगिता इसी में है कि वह हमारी चेतना में बहुत गहरे उतरकर हमारी वृत्तियों का संस्कार करता है, उन्हें एक उदात्त सामाजिकता प्रदान करता है।''[4] इसी उदात्तता से अनुप्राणित बाल्मिकी की कविता समाज और संस्कृति की मूल्यवत्ता को समाहित कर उन्नति के पथ पर अग्रसित होती है। ओमप्रकाश बाल्मिकी हिन्दी दलित कविता के मर्मज्ञ विद्वान और बहुचर्चित कलमकार रहे हैं। वह

अपने दलित जीवन में वर्णवादियों के द्वारा शोषित व भोगे हुए कटु अनुभव और समय की हकीकत को न सिर्फ अपनी कविता में ढालकर शब्दबद्ध तथा लयात्मकता प्रदान करते हैं बल्कि उनकी कविता भविष्योन्मुखी दलित समाज की प्रेरणास्रोत साबित होती है।

ओमप्रकाश बाल्मिकी की कविताएँ दलित, वंचित की गरीबी, विपन्नता, त्रासदी, अन्याय, अत्याचार, तिरस्कार, अपमान, गैर-बराबरी, अमानवीय शोषण के यथार्थ का प्रतिरूप गढ़ती, पिछड़े समाज को मानवीय गरिमा प्रदान करती है। वर्तमान समाज में बाल्मिकी जी का न रहना दलित समाज और दलित साहित्य दोनों के लिए बहुत बड़ी क्षति है क्योंकि उन्होंने दलितों के अस्मिता और संघर्ष, नकार और विद्रोह को दलित साहित्य में रूपबद्ध करके आधुनिक हिन्दी कविता में जो केन्द्रियता प्रदान की है वह अविस्मरणीय है। दलितों के शोषित एवं अपमानित जीवन को साहित्य के मूल में लाना और उसकी चेतना को उर्द्धोमुखी बनाने की प्रेरणा तथा सक्रियता उनके लेखनी के मानवीय पक्षधरता को वाणी प्रदान करता है। क्योंकि दलित भी मनुष्य है। दया, मानवीयता, सहिष्णुता, उदारता, त्याग, करूणा की भावना से वह परिपूर्ण है। मानव-कल्याण, परोपकारिता, सदाचार के भाव से वह पूर्णतः अंतःनिहित है। इस दृष्टि से भारतीय दलित साहित्य मानवीयता का पक्षधर साहित्य है, मानवीय-मूल्यों का साहित्य है, दलितों, वंचितों, पिछड़ों की वेदना, पीड़ा, संत्रास से मुक्ति का साहित्य है। बाबूराव वागूल के शब्दों में-''मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करनेवाला, मनुष्य को महान माननेवाली, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व का प्रबल विरोध करनेवाला साहित्य ही दलित साहित्य है।''[5] यह अलग बात है कि हिन्दी के विद्वान आलोचकों को दलित साहित्य में सौन्दर्यता का अभाव दिखाई पड़ा और वह उसे भटका हुआ साहित्य कहकर अपनी असहमति दर्ज की पर इस तर्क को खारिज करते हुए बाल्मिकी जी अपनी एक पुस्तक में कहते हैं-''दलित कविता को जिस तरह खारिज करने की मुहिम चलाए रखी, वह बेहद निराशाजनक थी। लेकिन दलित कविता का जन्म जिस परिवेश में हुआ और जिस उद्देश्य के लिए हुआ, उसके सामने आलोचकों के तमाम, तर्क ज्यादा दिन तक नहीं टिक पाए। दलित कविता ने सामाजिक जीवन में गहरे तक जड़ जमाए बैठी घृणा की जगह सामाजिक समता, बंधुत्व और मनुष्य की स्वतंत्रता को अपनी आंतरिक चेतना का हिस्सा बनाया। इसलिए वह उस व्यक्ति-समूह के पक्ष में खड़ी हुई, जो तीन हजार साल की दासता से मुक्ति की आकांक्षा अपने भीतर संजोए हुए था और सामाजिक, धार्मिक नियमों और शास्त्र सम्मत वर्जनाओं के सामने अपने आपको बेबस मान बैठा था क्योंकि उसके विरोध करने के सभी साधन उससे छीन लिए गए थे।''[6] इसलिए दलित कविता का आधार बिन्दु ही मनुष्य है तो उनका असमानता, उत्पीड़न का विरोध करना स्वाभाविक है। जबकि कविता दलित कवियों के लिए सबसे निकटतम मनुष्य की ईमानदार अभिव्यक्ति का साधन है। इस दलित कविता के संदर्भ में विमल थोरात लिखती हैं-''दलित कविता केवल कविता नहीं है। वह सदियों पुरानी विषमतामूलक सनातनी परंपराओं को दफन करने की एक विचारधारात्मक कार्रवाई है। चेतनागर्भ यह मानव अधिकारों का संघर्ष उस अमानुषिक व्यवस्था के विरुद्ध किया जा रहा है जो मानव गरिमा को गिराकर परजीवी संस्कृति का निर्माता है। यह एक ऐसा हथियार है जिसे पाकर दलित वर्ग स्वाधीनता की उम्मीद करता है।''[7] साधारणतः दलित कवि अपने भोगे हुए सत्य की अनुभूति और संवेदना से कविता को सृजित करता है। इसलिए दलित कविता साहित्य की सहज, सरल अभिव्यक्ति है जो लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति अपनी निष्पक्षता बयान करती है। ऐसे में आज मानवीय मूल्यों में आई मिलावट और गिरावट के बीच बाल्मिकी की कविताएँ मूलतः व्यक्ति की जिजीविषा, संघर्ष एवं चेतना से परिपूर्ण मानव जाति की समृद्धि तथा विकास की अगुवाई करती है।

ओमप्रकाश बाल्मिकी के जीवनकाल में ही चार काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए थे, जो वर्तमान आधुनिक हिन्दी कविता में उनकी गैरमौजूदगी को बड़ी सिद्धत के साथ व्यक्त करने के लिए काफी है। उनके चारों काव्य-संग्रहों में 'सदियों का संताप', 'बस्स ! बहुत हो चुका', 'अब और नहीं' तथा 'शब्द झूठ नहीं बोलते' शामिल है। उनकी सभी काव्य-कृतियाँ अपने समय से साक्षात्कार करती दलित जीवन की पीड़ा, संघर्ष और प्रगति को विशेष महत्ता प्रदान करती है। यह कहना अन्योक्ति न होगा कि उनके चारों संग्रह दलित जीवन की पीड़ा, यातना और अमानवीय त्रासदी का महागाथा है। उनके सभी संग्रह मूलतः दलितों के शारीरिक और मानसिक गुलामी के साथ-साथ वर्ण-व्यवस्था की मार से उपजे असंतोष, आक्रोश की गहनता और संघर्ष, विद्रोह की व्यापकता को अत्यंत सूक्ष्मता एवं गहराई में जाकर उसे विवेचित और विश्लेषित करते हुए उसके अधिकारों की माँग को नया पथ दिखाते हैं। उनकी कविताएँ दलित समाज की अभिव्यक्ति के लिए इतनी प्रभावकारी और तीक्ष्ण है कि वह उन्हें दलित कविता के माध्यम से न सिर्फ मानवीय सामाजिकता से संयुक्त करती है अलबत्ता वर्तमान विडंबनापूर्ण तथा विषमतापूर्ण भारतीय समाज व्यवस्था में बड़े बदलाव की वकालत करती है। उनकी कविता बहुजन समाज में यह स्पष्ट उद्घोषणा करती है कि समय बदल रहा है, युग में विस्मयकारी परिवर्तन आया है नतीजतन इसका प्रभाव दलित, वंचित पर पड़ना लाजिमी है। यही कारण है कि आज दलित समाज पूर्ववर्ती परम्पराओं और वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध कर समाज में अपनी गरिमा अपने बौद्धिक चेतना के जरिए अर्जितकर अपनी स्वतंत्र पहचान बना पाने से सफल हो रहा है। भूमंडलीकरण के दौर में दलितों की स्वतंत्रता और अस्मिता की अभिव्यक्ति बाल्मिकी की कविता है।

सदियों के इतिहास में दलित, वंचित, शोषित और अमानवीयता के दुष्चक्र में पिसते आ रहे हैं। न जाने उन्हें किन-किन रूपों में दबाया और कुचला गया। उनके व्यक्तित्व और स्वाभिमान को रौंदा गया। समाज में उसे अपने अधिकार और कर्त्तव्य से कोशों दूर रखा गया। समाज में यदि वह अपने स्वाभिमान और नैतिकता के प्रति आवाज बुलंद करता था तो उसके व्यक्तित्व को रौंदकर उसकी स्वतंत्र पहचान को ही आजीवन के लिए धूमिल कर दिया जाता था। यह उच्चवर्ग में वर्णाश्रम व्यवस्था एवं सामंती व्यवधानों के कारण अपने को कभी शामिल नहीं कर पाया। ऐसा नहीं है कि वह मनुष्य नहीं है, समाज में उसे जीवन जीने का अधिकार नहीं है अथवा समाज के प्रति उसके कर्त्तव्यबोध और उत्तरदायित्व नहीं है सब कुछ होने के बावजूद भी समाज में चली आ रही परम्परागत सवर्ण मानसिकता की वह निरंतर भेंट चढ़ता रहा है। समाज में आज भी दोहरी मानसिकता काम कर रही है ऐसे में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि दलित, वंचित क्या मानव नहीं है या फिर सवर्णों के सुख-दुःख, आशा-निराशा दलित मानव से भिन्न है? आखिरकार यह गैर बराबरी कैसी? यह अलगाव और मानसिक उत्पीड़न किस विचारधारा को पोषित करता है। मानवीयता के सारे गुण सवर्ण मानसिकता की भाँति दलितों, वंचितों में भी है, किसी तरह की कोई मानवीय भिन्नता नहीं है फिर भी उसे हाशिए पर रखा जाता है उसके साथ समाज में मनुष्यता जैसा समान बर्ताव नहीं किया जाता है। आज भी उसके तथा उसके समाज के साथ अमानवीयता और बर्बरता का खेल जारी है पर अब दलितों के कदम गैरबराबरी से बराबरी की ओर बढ़ने लगे हैं। जिसके मूल में अम्बेडकर के विचार और दर्शन हैं। दलितों के लिए जिनका मूल मंत्र ही था शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो। उनसे वह प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण कर आज अपनी स्वतंत्र पहचान तथा मुक्ति-संघर्ष के लिए उद्धत हुआ है। कारण '' डॉ. अम्बेडकर दर्शन मानवीय संवेदनाओं, समतामूलक समाज की स्थापना, स्वतंत्रा के अधिकार, पारस्परिक बंधुत्व भाव उत्पन्न करने और वर्ण-व्यवस्था से मुक्त होकर जीवन जीने के सरोकार का दर्शन है। इसी विचार से प्रेरणा लेकर दलित अपनी पहचान तलाशना चाहता है। जीवन की इसी जद्दोजहद ने दलित अभिव्यक्ति को सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा है। यह एक मुक्ति संघर्ष है।''[8] बाजारवाद की नयी सदी में दलितों का संघर्ष जटिल और व्यापक बन चुका है। युग के बीतने के साथ दलित समाज इस शोषण की भट्टी में तपकर अपने समाजार्थिक वजूद को जान पाने में थोड़ा समर्थ हुआ है। परिणामतः हाल के दिनों में वह सामाजिक अनुभव और कुछ किताबी ज्ञान जिससे उसे दूर रखा जाता था के माध्यम से संघर्षशीलता और प्रतिरोध की संस्कृति को अपने भीतर अवश्य जिंदा किया है। शोषण मुक्त समाज व्यवस्था के प्रति उसकी महत्ता तीव्र से तीव्रतर हुई है तथा अब तक की वह पूरी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में कामयाब जरूर हुआ है। आज की नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से संचित अनुभव और विद्रोह के मार्फत से दुनिया को नई राह दिखाने में सक्षम हुआ है। बाल्मिकी ऐसे ही शोषण की आवाँ में पककर सोना बनते हैं और उसी संचित अनुभव कोश के द्वारा वह समाज के प्रत्येक दलित, वंचित को, संघर्ष और प्रतिशोध लेने की प्रेरणा अपनी कविताओं के माध्यम से देने का प्रयास किया है।

साधारणतः बाल्मिकी की कविता अपने समय के नब्ज को पकड़कर मानवीय मूल्यों के प्रति रक्षार्थ विषम समाज व्यवस्था के खिलाफ संविधान द्वारा प्रदत्त समता, समानता का नारा जयगान करती है। वह अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'मुख्यधारा और दलित साहित्य' में स्पष्ट लिखते हैं- ''मेरा मानना है कि दलित साहित्य सामाजिक जीवन में मानव-मूल्यों के प्रति गहरा लगाव रखता है और उसकी पुनर्प्रतिष्ठा के लिए कृतसंकल्प है। इसकी अंतर्धारा में जीवन के वे तमाम सरोकार शामिल हैं जो एक मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचाने।''[9] बाल्मिकी का समग्र साहित्य मनुष्य और मनुष्यता का साहित्य है। उनकी कविता दलितों, वंचितों की वेदना और पीड़ा से मुक्ति की कविता है जो दलितों के बनते नए समाज की संकल्पना को उजागर करता है। 'शब्द झूठ नहीं बोलते' संग्रह की भूमिका में कवि ने स्वयं लिखा है-''मेरे लिए कविता आनन्द या रसास्वादन की चीज नहीं है, बल्कि कविता के माध्यम से मानवीय पक्षों को उजागर करते हुए मनुष्यता के सरोकारों और मनुष्यता के पक्ष में खड़ा होना है। .... जिस विषमतापूर्ण समाज में दलित संघर्षरत है, वहाँ मनुष्य की मनुष्यता की बात करना अकल्पनीय लगता है, इसलिए सामाजिकता में समता बोध को मानवीय पक्ष में परिवर्तित करना दलित कविता की आंतरिक अनुभूति है जिसे अभिव्यक्त करने में गहन वेदना से गुजरना पड़ता है।''[10] बाल्मिकी को ही नहीं अलबत्ता समूचा दलित समाज इस बात से अवगत है कि ऊँच-नीच, अवर्ण-सवर्ण, परम्परा, रूढ़ियाँ सब मानव समाज की कुबुद्धि की फसल है जिसके उपजाऊकर्ता उच्च जाति व वर्ग के लोग हैं जो अपनी सुविधा तथा लाभ को केन्द्र में रखकर अपने से नीची जातियों व दलितों का शोषण करते आ रहे हैं और जब कभी दलित, शोषित अपने अधिकार की माँग के लिए उच्चवर्गीय समाज के समक्ष आवाज बुलंद करता है तब उसे छत-विक्षत कर दिया जाता है। बाल्मिकी जी 'अपने हिस्से की रोटी' कविता में उच्चवर्ग की संवेदनहीनता और कठोरता का बारीक सर्वेक्षण करते हुए लिखते हैं –

''मैंने माँगी, अपने हिस्से की रोटी
वे उठ खड़े हुए, हाथों में अंगारे लेकर।''[11]

बाल्मिकी जी तत्कालीन समाज व्यवस्था की उदासीनता और समकालीन दौर से संघर्ष करते हुए दलित समाज की संस्कृति तथा परम्परा की मार खाती जातियों को जिस रूप में अपनी कविताओं में तरजीह दी है वह उनके प्रखर लेखन, उदारता, संवेदनशीलता और सामाजिक प्रतिबद्धता को उजागर

करता है। वस्तुतः दलित लेखन का प्रमुख उद्देश्य भी अमानवीय त्रासदी से मुक्ति का रहा है। डॉ. सी.बी. भारती का मानना है-''प्रतिबद्धता ही दलित साहित्य का सौंदर्य विधान है। दलित साहित्य-लेखन दलित अस्मिता की तलाश है .... यह सामाजिक परीक्षण व उनके छिन्न-भिन्न कर देने की एक अनबुझी प्यास है। वर्ण-व्यवस्था से उपजी अमानवीय त्रासदी से मुक्ति की छटपटाहट ही दलित साहित्य का मूल स्वर है। जातिविहीन, वर्गविहीन समाज की संरचना की इसका मूल प्रतिपाद्य है।''12 हकीकत तो यही है कि मानवता में ऊँच-नीच, जाति-पाति, धर्म-अधर्म, भेद-भाव का कोई स्थान नहीं है। ऊपरी नाक-नक्शे, रंग-भेद को छोड़ दिया जाए तो भीतरी रंग सबका ही लाल है। सबकी जरूरतें, माँग और भूख एक है। ऐसा थोड़े है कि उच्चवर्ग ब्रह्मा के मुख से पैदा होते हैं और दलित, पिछड़े ब्रह्मा के पैर से। सभी तो माँ के गर्भ से ही जन्म लेते हैं, फिर उच्च वर्ग में झूठा अहंकार, दंभ किस बात की है। मनुष्य होने के नाते सभी बराबर है। ऐसा नहीं है कि –

''मनुष्य का जन्म तो होता है
सिर्फ माँ के गर्भ से
फिर आप कैसे पैदा हो गये
ब्रह्म के मुख से?''[13]

बाल्मिकी जी का स्पष्ट मानना है कि मनुष्य, मनुष्य में कोई भेद हो ही नहीं सकता है। सदियों से जाति, धर्म, पंथ आदि के आधार पर समाज में जो मानवीयता की दीवारें खड़ी की गई है वह समाज की भेदकता को प्रदर्शित करती है। इसलिए बाल्मिकी जी जाति को एक नुकीले औजार के रूप में देखते हैं जो सड़क पर चलने वाले सारे पथिक को कहीं न कहीं छलनी कर देता है -

''जाति आदिम सभ्यता का
नुकीला औजार है
जो सड़क चलते आदमी के
कर देता है छलनी
तुम एक हो/..
जो न तुम्हें जीने देता है
न हमें।''[14]

और दोनों वर्गों को एक जैसी टीस देता है। आज बड़ी जातियाँ खुद अपनी जाति की दुश्मन बनी हुई है फिर छोटी जाति की बात ही क्या? वस्तुतः 'जाति' शब्द बहुत छोटा है पर भारत जैसे विशाल देश में इस शब्द से मुक्त हो पाना उतना ही बड़ा काम है। काम है छोटी जाति में जन्म लेना। हालाँकि छोटी जाति में पैदा होना कोई गुनाह नहीं है लेकिन समाज में सारे नियम-कानून बनाने वाले तथाकथित ऊँची जाति के लोग हैं, जो भगवान से बड़ा अपने को मानते हैं, उनका विरोध यानी भगवान का विरोध है। वर्तमान समय में जाति के आधार पर श्रेष्ठ मानने का झूठा दंभ बाल्मिकी की 'श्रेष्ठ' कविता वर्ण-व्यवस्था पर करारा आक्रमण करती है जो समय में श्रेष्ठ बने रहने का मन में अहंकार पालते हैं। यह उनकी संवेदनहीनता, निकृष्टता और उदासीनता नहीं तो और क्या है? बाल्मिकी जी लिखते हैं –

''अच्छा ही हुआ, मैं नहीं जन्मा
उच्चवर्गीय माँ के गर्भ से
होता मैं भी संवेदनहीन जड़ परजीवी।''[15]

बाल्मिकी की कविता शोषण के प्रति संघर्ष करती, नकार से भरी, विद्रोह और व्यंग्य की धार धारण किये नयी सदी के युगीन प्रश्नों से मुठभेड़ करती है –

''इक्कीसवीं सदी में
लौट आती है पेशवाई सदी
जहाँ इंसान की औकात
जन्मना जाति से तय होती है।''[16]

सदियों से ऊँचे कुर्सी पर आसीन यह संवेदनहीन तबका सभ्यता और संस्कृति के नाम पर दलितों, पिछड़ों के साथ बर्बरता की सारी हदों को आज पार किया है। कभी जाति के नाम पर, कभी असभ्य के नाम पर, कभी अधिकार के नाम पर, कभी न्याय के नाम पर, कभी कर्त्तव्य के नाम पर। वह न जाने जख्म इतने भयानक और गहरे दिए हैं कि उसकी भरपाई कर पाना कठिन है। बाल्मिकी इस पर दुःख व्यक्त करते हुए कलम चलाते हैं –

''विनाशकारी साजिशों के निशान
मौजूद है, मेरे सीने और पीठ पर
दे रहे हैं गवाही
अतीत के शाह दिनों की।''[17]

बाल्मिकी मानवीय संवेदना और सरोकार को विशेष महत्व देते हैं, इसलिए उनकी कविता समाज में प्रेम, सौहार्द्र, समता, समानता और न्याय का प्रतिनिधित्व करती है। जातिविहीन, वर्गविहीन समाज की परिकल्पना उनके लेखन का प्रमुख उद्देश्य रहा है। समाज में परिव्याप्त असमानता की खाई को खत्म करके समतामूलक समाज व्यवस्था लगभग सभी दलित कवियों का मूल लक्ष्य रहा है। ऐसे में जाति प्रथा का खात्मा, अस्पृश्यता से मुक्ति और जातीयहीनता के दंश से आजादी को वह अपनी कविता 'वह दिन कब आयेगा' में दलितों की मनोदशा को व्यक्त करते हुए कहते हैं –

''वह दिन कब आयेगा
जब बामनी नहीं जनेगी बामन
चमारी नहीं जनेगी चमार
भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी
तब नहीं चुभेंगे
जातीय हीनता के दंश
नहीं मारा जायेगा तपस्वी शंबूक
नहीं कटेगा अंगूठा एकलव्य का
कर्ण होगा नायक
राम सत्ता लोलुप हत्यारा
क्या ऐसे दिन कभी आयेंगे।''[18]

इतना ही नहीं वह सदियों की असहनीय पीड़ा, यातना, छुआछूत से मुक्ति के लिए समूचे दलित समाज को जाग्रत करते हुए लिखते हैं –

''दोस्तो !
इस चीख को जगाकर पूछो
कि अभी और कितने दिन
इसी तरह गुमशुम रहकर
सदियों का संताप सहना है।''[19]

इक्कीसवीं सदी में वर्ण और जाति की भेदकता विकृति मानसिकता को पोषित करने में अपनी कम भूमिका नहीं निभा रही है। हकीकत में इस देश से जाति नहीं जाती। कहने को हम सब लोकतांत्रिक देश के निवासी हैं और इस लोकतंत्र पर हमारी अटूट आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास है पर क्या वास्तव में इस लोकतांत्रिक प्रणाली के तहत दलितों, वंचितों को वह सारी सुविधाएँ, व्यवस्थाएँ तथा अधिकार मिल पाएँ हैं जिसके वह आकांक्षी रहे हैं या फिर लोकतंत्र उनके लिए महज एक सपना है। कारण आज यहाँ सब कुछ जाति के नाम पर तय किया जाता है। वह चाहे योग्यता हो, शिक्षा हो, नौकरी हो, चुनाव हो या न्याय ही क्यों न हो? असलियत तो यह है कि लोकतंत्र भी आज उच्चवर्गों द्वारा संचालित है जो किसी भी लोकतंत्र के लिए विडंबनापूर्ण और दूर्भाग्यपूर्ण है। पूँजीवादी लोकतांत्रिक पद्धति में जाति व्यवस्था के यथार्थ को बेनकाब करते हुए बाल्मिकी जी कहते हैं –

''यह कैसा लोकतंत्र है भाई?
जहाँ चुनाव, नौकरी, इज्जत
योग्यता, शिक्षा
सब जाति तंत्र तय करता है।''[20]

ओमप्रकाश बाल्मिकी अपने समय के सबसे संवेदनशील कवि हैं और उनकी कविता सामाजिक यथार्थ की कविता है। अमूमन कवि जिन परिस्थितियों से अपने जीवन का निर्वाह करता है कविता उसी जमीन से संघर्ष करती हुई ऊर्जा ग्रहण करती है। ऐसे में बाल्मिकी जी व्यक्तिगत जीवन में जिस जाति से निकलकर आते हैं वह अत्यंत ही निम्न जाति है ऊपर से सवर्णों की यातना। इससे वह काफी आहत और दुःखी जरूर होते हैं लेकिन पस्त नहीं होते हैं

बल्कि वह और अधिक ऊर्जावान होकर कविता में अपने संघर्ष को वानगी देते हैं। उनकी स्पष्ट अवधारणा रही है कि यदि दलितों, वंचितों को मुख्यधारा में लाना है तो सभी को संगठित और समन्वित होकर संघर्ष करने की जरूरत है तभी समाज में न्याय व्यवस्था स्थापित हो सकती है। कभी भी उच्च जाति के लोग अपने से निम्न जाति के लोगों को सभ्य संस्कृति के अंतर्गत समाहित करने का प्रयास ही नहीं किया, उसे अक्सर निकृष्ट श्रेणी और जाति का मानता रहा, जबकि संयम, विवेक, ज्ञान, सौंदर्य, सहिष्णुता में समान रहा है कि केवल जाति के स्तर से समाज में अलगाव और विभाजन मानवता का पैमाना नहीं हो सकता है। बाल्मिकी की 'जाति' शीर्षक कविता गहरी वेदना और वितृष्णा से भरी हुई सदियों से अपने हृदय में छिपाये संघर्ष और विद्रोह को वाणी प्रदान करती है –

''मैदान में होगा जब जलसा
आदमी से जुड़कर आदमी
जुटेगी भीड़
तब कौन बता पाएगा
भीड़ की जाति।''[21]

पूरी कविता दलितों के भविष्योन्मुखी बड़े बदलाव की आशा अभिव्यंजित करती है। आज प्रत्येक स्थिति में शोषण और अमानवीयता से मुक्ति की पहचान बाल्मिकी की कविताओं में दलित अस्मिता के संकट और संघर्ष को प्रतिफलित करती है। डॉ. रामचन्द्र बाल्मिकी की कविता के संदर्भ में बड़ा सटीक लिखते हैं- ''बुनियादी अधिकारों से वंचित श्रमशील दलित के वजूद को एहसास कराती ओमप्रकाश बाल्मिकी की कविताओं का दायरा सम्पूर्ण समाज और देश रहा है। हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति के 'गौरवमयी' तिलिस्म को बोधकर अम्बेडकरवादी दृष्टि से नवीन समाज और संस्कृति के विकल्प का आह्वान करने वाली कविताएँ हैं।''22 तभी तो 'किष्किंधा' कविता में उन्होंने समाज में रोड़ा बने वर्णवादियों को सचेत करते हुए अपने जाति, वर्ग, धर्म के भीतर आई नवीन जागृति और नई चेतना को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं –

''मेरे अंतस की गुफा में
बन्द पड़े हैं असंख्य बालि
जो बाहर आयेंगे किसी दिन
अवरोधक हटाकर।''[23]

बाल्मिकी की कविता वर्चस्ववादी सभ्यता और संस्कृति को केन्द्र में रखकर हिन्दू धर्म और संस्कृति की पवित्रता पर प्रश्न खड़ी करती है। यह दलित कविता का नवीन स्वरूप ही है जिसमें रिरियाहट और याचना के लिए की स्पेस नहीं है। पूरी की पूरी दलित कविता आज आदर्श और नैतिकता को कटघरे में रखकर नियतिवाद और ईश्वर की अवधारणा को पूर्णतः नकारती है। ''वर्ण, जाति, देव, धर्म तो कल्पनाएँ हैं जिन्हें नकारा जा सकता है परन्तु मनुष्य को नकारा नहीं जा सकता है।''24 इसलिए दलितों में सामाजिक विषमता और अन्याय के प्रति विद्रोह और रोष है। बाल्मिकी की 'जहर' कविता वर्णवादियों के धर्म, शास्त्र, पाखंड और आडम्बर का विरोध करते हुए मनुष्य की हक अदायगी करती है –

''थोड़ा-थोड़ा जानने लगा हूँ
टुच्चे लोगों की असलियत
कानूफाड़ू शास्त्रीयता
और छद्म शब्दजाल का रहस्य
सच बोलने से नहीं रोक पायेंगे।''[25]

वही वर्तमान युवा पीढ़ी अपने आधुनिक विचारों से लैश आज अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति न सिर्फ सचेत एवं सजग हुआ है बल्कि वह वर्णवादियों के बनाए सारे नियमों, कानूनों, शर्तों को बिना किसी निडरता के अतिक्रमण करने में सक्षम रहा है। वह अपने पथ पर अडिग अन्याय, अत्याचार के खिलाफ बिगुल बजा रहा है। वह ''हजारों वर्ष की प्रताड़ना, शोषण, द्वैष, वैमनस्य और भेदभाव से दबा दलित अपनी अस्मिता की खोज के लिए जागरूक दिखाई पड़ता है।''26 पूँजीवादी लोकतंत्र में वह अपनी स्वतंत्रता, अस्मिता और पहचान से परिपूर्ण हो रहा है जो उच्चवर्ग के बीच खलबली पैदा कर दिया है –

''उतारकर
फेंक दिया है मैंने

अपना डर।''[27]

इतना ही नहीं दलित, वंचित आज पशुतापूर्ण अमानवीय वर्ण-व्यवस्था के खिलाफ क्रांति का रूख अख्तियार कर लिया है। वह मानवीय अधिकार और मूल्यबोध के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञ है। बाल्मिकी जी कह उठते हैं –

''गहरी पथरीली नदी में
असंख्य मूक पीड़ाएँ
कसमसा रही हैं
मुखर होने के लिए रोष से भरी हुई
बस्स ! बहुत हो चुका
चुप रहना
निरर्थक पड़े पत्थर
अब काम आयेंगे संतप्त जनों के।''[28]

वाकई बाल्मिकी की कविताएँ वर्ण-व्यवस्था के खिलाफ दलित समाज को संघर्ष और चेतना से उद्बुद करती है। अपने अधिकारों के प्रति व्यक्ति की चेतना और समाज को संघर्ष तथा विद्रोह करने के लिए आश्वस्त करती है। प्रतिरोध और आक्रोश से परिपूर्ण बाल्मिकी तथा उनका समाज आज नया इतिहास रचने के लिए आतुर है –

''मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर
खोद लिया है, संघर्ष
जहाँ आँसूओं का सैलाब नहीं
विद्रोह की चिंगारी फूटेगी
जलती झोपड़ी से उठते धुएँ में
नया इतिहास रचेगी।''[29]

जातीयता का दंश अब दलितों को गँवारा लगने लगा है। इसलिए ''दलित एक जाति नहीं बल्कि एक अनुभूति है जिसमें समाज के निचले स्तर के लोगों के अनुभव, उनकी खुशियाँ और संघर्ष शामिल हैं। यह सामाजिक दृष्टिकोण से परिपक्व होती है जिसका संबंध नकार, विद्रोह और विज्ञान के प्रति प्रतिबद्धता से है और जिसकी अंतिम परिणति क्रंति में जाकर होती है।''30

वह सवर्णों की दमनकारी नीतियों और चतुराइयों की अतिशयता से भली-भाँति परिचित हो चुका है। वर्षों से समाज की गंदगी साफ करने में बिता चुके दलितों ने अब अपनी आँखें सम्पूर्णता में खोल ली है। सवर्णों के वह अब तक के सारे कुकर्मों का प्रतिशोध लेना सिख गया है। बाल्मिकी जी इस सड़ांध आती व्यवस्था के प्रतिक्रिया स्वरूप लिखते हैं –

''बहुत दिन जी चुके हताशा और नैराश्य के बीच
कलाबाजियों और चतुराई भरे शब्दों का
खेल हो चुका
अब और नहीं
तय करना होगा
कहाँ खड़े हो तुम
साये या धूप में।''[31]

ओमप्रकाश बाल्मिकी को अपनी कविता पर पूर्णतया यकीन है कि कभी न कभी गुलामी की जंजीरें टूटेगी, दलितों को अपना स्वाभिमान और समाज में समानता के अधिकार मिलेंगे कारण शब्द झूठ नहीं बोलते हैं। शब्द की आग से ही ऊर्जा ग्रहण कर बाल्मिकी ने अपने लेखन को गहरे सरोकार से जोड़ा है इसलि उनकी कविता का केन्द्र मानव है। शब्द अतीत, वर्तमान के साथ भविष्य में भी जीवित रहते हैं। अतएव उनकी कविता के शब्दों में दलित वंचित की आग है, उनमें उनकी वेदना के दर्द भरे स्वर है जो दलित संघर्ष की लड़ाई को भविष्य के दिनों में जीवंतता प्रदान करते हैं। उनके शब्दों से बनी कविता निस्संदेह भविष्य में मानव मुक्ति का इतिहास रचेगी। उनके शब्दों में -

''पीड़ित जनों की आह में
जिंदा रहते हैं शब्द
जो कभी नहीं मरते
खड़े रहते हैं
सच को सच कहने के लिए
क्योंकि
शब्द कभी झूठ नहीं बोलते।''[32]

इसी स्वप्न और विश्वास के साथ बाल्मिकी की कविता सदियों से संतप्त मनुष्य जीवन के मर्मांतक सच को प्रतिध्वनित करते हुए मावन के अस्तित्व और उसकी अस्मिता के लिए जो श्रेष्ठ है उनकी कविता आज उनके साथ खड़ी है।

अंततः कह सकते हैं कि ओमप्रकाश बाल्मिकी की कविता दलित मुक्ति की संघर्षगाथा है। उनके सभी काव्य-संग्रह मानवीय मूल्यों की आवाज बुलंद किए मानवीयता का जो स्वर प्रदान करते हैं उसमें उनका समस्त काव्य दलित चेतना की अगुवाई करते हुए मानव मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। संग्रहों में दलित, वंचित, शोषित समाज का संघर्ष, विद्रोह, अपमान, पीड़ा, आक्रोश और चुनौती को जो वाणी मिली है वह वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में दलितों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दुर्व्यवहारों को नकारती समता, समानता, स्वतंत्रता, न्याय, बंधुत्व के निर्माण में सफल सिद्ध हुई है।

संदर्भ

1. प्रो. अमरनाथ – हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-2015, पृ.-277
2. श्रीवास्तव डॉ. रीता – मध्यकालीन काव्य में जीवन मूल्य और समकालीन परिवेश, कलम प्रकाशन, कानपुर-2013, पृ.-06
3. वही, पृ.-06
4. भारती डॉ. धर्मवीर – मानव मूल्य और साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली-2006, पृ.-107
5. बाल्मिकी ओमप्रकाश – दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-2017, पृ.-16
6. बाल्मिकी ओमप्रकाश – दलित साहित्य अनुभव संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-2015, पृ.-57
7. सं0 प्रो. विमल थोरात एवं डॉ. सूरज बड़त्या – भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, रावत पब्लिकेशन्स, 2008, पृ.-प्रस्तावना से।
8. बाल्मिकी ओमप्रकाश – दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ.-94
9. बाल्मिकी ओमप्रकाश – मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली-2015, पृ.-51
10. बाल्मिकी ओमप्रकाश – शब्द झूठ नहीं बोलते, अनामिका पब्लिशर्स प्रा0 लिमिटेड, दिल्ली-2012, पृ.-भूमिका से
11. बाल्मिकी ओमप्रकाश – अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-2009, पृ.-96
12. बाल्मिकी ओमप्रकाश – दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ.-54
13. बाल्मिकी ओमप्रकाश – अब और नहीं, पृ.-69
14. वही, पृ.-30
15. वही, पृ.-102
16. उपेक्षा-12, अम्बेडकरवादी युवा कविता विशेषांक, जुलाई-सितम्बर-2005, पृ.-58
17. बाल्मिकी ओमप्रकाश – अब और नहीं, पृ.-28
18. बाल्मिकी ओमप्रकाश – बस्स ! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, दिल्ली-1997, पृ.-103
19. बाल्मिकी ओमप्रकाश – सदियों का संताप, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली-2008, पृ.-32
20. बाल्मिकी ओमप्रकाश – शब्द झूठ नहीं बोलते, पृ.-33
21. बाल्मिकी ओमप्रकाश – अब और नहीं, पृ.-20

22. कर्दम जयप्रकाश – ओमप्रकाश वाल्मिकी व्यक्ति, विचारक और सृजक, वाणी प्रकाशन, दिल्ली-2016, पृ.-325
23. बाल्मिकी ओमप्रकाश – अब और नहीं, पृ.-22
24. बाल्मिकी ओमप्रकाश – दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ.-29
25. बाल्मिकी ओमप्रकाश – अब और नहीं, पृ.-25
26. बाल्मिकी ओमप्रकाश – दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ.-29
27. बाल्मिकी ओमप्रकाश – अब और नहीं, पृ.-45-46
28. बाल्मिकी ओमप्रकाश – बस्स ! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, दिल्ली-1997, पृ.-80
29. बाल्मिकी ओमप्रकाश – पृ.-25
30. डांगले अर्जुन – दलित साहित्य, अतीत वर्तमान और भविष्य, ओरिएंट लांगमैन, बम्बई-1992, पृ.-234-235
31. बाल्मिकी ओमप्रकाश – अब और नहीं, पृ.-104-105
32. बाल्मिकी ओमप्रकाश – शब्द झूठ नहीं बोलते, पृ.-34

■■■